संगीत शिक्षा एक सामान्य विवेचन

डॉ. सविता उप्पल
प्राचार्य, स्वामी गंगागिरी जनता गर्ल्ज़ कालेज,रायकोट, लुधियाना

शिक्षा तथा मानव–जाति का जन्म–जन्मान्तर का संबंध है। शिक्षा आन्तरिक बुद्धि तथा विकास की कभी न समाप्त होने वाली प्रक्रिया है और इसकी अवधि जन्म से मृत्यु तक फैली हुई है। शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य मनुष्य को सुसभ्य तथा उसके जीवन को प्रगतिशील एवं सांस्कृतिक बनाना है। यह व्यक्ति तथा समाज की उन्नति के लिए अपरिहार्य है। शिक्षा के द्वारा ही मानव अपनी विचारशक्ति तथा तर्कशक्ति, समस्या–समाधान तथा बौद्धिक प्रतिभा एवं रूझान आदि को विकसित करता है। मनुष्य प्रतिदिन–प्रतिक्षण कुछ न कुछ सीखता है। अतः शिक्षा एक निरन्तर तथा गतिशील प्रक्रिया है।

शिक्षा, जिसे अंग्रेजी भाषा में Education (ed-u-ka-shun) कहते हैं, लातीनी भाषा के शब्द म्कनबंजपवद से निकला है, जिसका अर्थ है– To lead out or to draw out'

दूसरे शब्दों में इसका अर्थ मनुष्य में से सर्वोत्तम प्राप्त करना अथवा मार्गदर्शन करना है।

'शिक्षा' शब्द संस्कृत के 'शास' धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है–शिक्षा देना, निर्देश देना अथवा आज्ञा देना है।

भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार विभिन्न वेदों तथा उपनिषदों में 'शिक्षा' के विभिन्न अर्थ दिए गये हैं। ऋग्वेद के अनुसार शिक्षा मनुष्य को आत्मविश्वासयुक्त तथा निःस्वार्थी

बनाती है। उपनिषदों के अनुसार शिक्षा का अंतिम लक्ष्य निर्वाण है। स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार–'मनुष्य की आत्मनिहित पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा कहलाती है।'

रवीन्द्रनाथ टैगोर का कथन है– 'In all developed countries the lower aim of education deals with material opportunities but the higher aim relates to fulfillment of human life.'

गांधी जी के अनुसार, जो चरित्र की शुद्धि न करे, वह सच्ची शिक्षा नहीं है। शिक्षा संस्कारों को परिष्कृत करने का माध्यम है। शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य में भावाभिव्यक्ति की क्षमता उत्पन्न करना है। एक सुशिक्षित मनुष्य अपने भावों का संप्रेषण और आदान–प्रदान भली भांति कर सकता है। वह अपने विचारों से दूसरों को प्रभावित कर सकता है। और संगीत की शिक्षा द्वारा जहां मनुष्य आध्यात्मिक सुख–सन्तोष का अनुभव करता है, वहीं दूसरी ओर वह जीवन के लक्ष्य को भी प्राप्त करने में सफल हो जाता है।

संगीत–शिक्षण की विभिन्न पद्धतियां

विद्या और कला संस्कृति का गामा है। इसी गामे में संस्कृति की चैतन्य शक्ति संचित रहती है। प्राचीनकालीन संगीत के ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक युग में संगीत का कला के साथ–साथ एक नैसर्गिक विद्या के रूप में भी प्रर्याप्त महत्व रहा है, क्योंकि संगीत केवल मनोरंजन की ही वस्तु नहीं है, बल्कि एक नाद विद्या है। व्यक्ति को सभ्य–सुसंस्कृत समझे जाने हेतु अन्य विद्याओं की भांति संगीत–विद्या का ज्ञान भी अनिवार्य समझा जाता था। इसलिये संगीत के अध्ययन–अध्यापन का क्रम प्राचीनकाल से आधुनिक काल तक अविच्छिन्न रूप से चला आ रहा है। परन्तु प्राचीन और आधुनिक संगीत–शिक्षण की विधियों में पर्यान्त अन्तर पाया

Pratibha Spandan

जाता है। यह अंतर उसी अनुपात में बढ़ा है, जितने अनुपात में दो युगों के विद्यार्थियों में अंतर आया है। संगीत शिक्षा का अंतिम अंग है शिक्षा का मुख्य उदेश्य मानव का समरूप विकास–शारीरिक, बौद्धिक, सौन्दर्य–संबंधी, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक–करना है और संगीत इस उद्देश्य की पूर्ति में पूर्णतः खरा उतरता है।

मोलियर का विश्वास है कि संगीत की शिक्षा विश्व–शान्ति स्थापित करने में सहायक हो सकती है–

'If all men learn music, would it not be a mean of agreeing together in concord and establishing universal peace in the world.'

अन्य जीवनोपयोगी कलाओं की शिक्षा के अतिरिक्त मानव–जाति के लिए संगीत की शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। यह प्रकृति–प्रदत्त प्रतिभा को स्थायित्व प्रदान करने में सहायक होती है और हमारे क्रियाकलापों को अधिक आनंदमय बना देती है।

प्राचीन गुरू–शिष्य परम्परा द्वारा संगीत–शिक्षण

शिक्षा के क्षेत्र में सामूहिक तौर पर संगीत शिक्षा देने से पहले, गुरू शिष्य परम्परा ही प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त थी। प्राचीनकाल में छात्रों की शिक्षा के लिए विशिष्ट विद्या की व्यक्तिगत शिक्षा–प्रणाली का अनुसरण होता था। कला अथवा ज्ञान की विशिष्ट शाखा के लिए स्वाभाविक रूचि अथवा प्रतिभा वाले युवा को उसी विद्या के विशेषज्ञ के पास भेजा जाता था और वही उसे प्रशिक्षण प्रदान करता था। उन दिनों शिक्षा एक अमूल्य दान समझा जाता था। प्राचीनकाल में महान कलाकार और विद्वान स्वयं ऐसे शिक्षार्थियों की खोज में रहते थे, जिन्हें वे अपनी विद्या और कला का दान कर सकें और जो ज्ञानदान के महत्व को समझ सकें।

गुरू–शिष्य परम्परा के महत्वपूर्ण पहलू हैं– गुरू का सम्मान, विनय तथा साधना। गुरू को एक आध्यात्मिक शिक्षक अथवा मार्गदर्शक कहा गया है, जिससे विद्यार्थी अथवा शिष्य किसी विशेष विषय या कला के बारे में ज्ञान प्राप्त करता है। भारतीय संस्कृति में गुरू का दर्जा सदैव ही ऊंचा और सम्मान–योग्य माना गया है।

गुरू–शिष्य परम्परा में गुरू और शिष्य के मध्य आत्मिक संबंध माना जाता था। अपनी समस्त शिक्षा के दौरान शिष्य गुरू–गृह में ही रहते थे, गुरू की सेवा तथा स्तुति किया करते थे और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में गुरू की आज्ञा का पालन किया करते थे।

विनय से तात्पर्य विनम्रता से है। विनम्रता को शिष्य के लिए एक आवश्यक गुण माना गया है। प्रत्येक शिष्य की यह धारणा होती थी कि अपने माता–पिता तथा गुरू के प्रति विनयशील रहने और उनका आदर करने से उसका कल्याण होगा।

हमारे भारतीय संगीत के संदर्भ में शिष्य के लिए एक अन्य महत्वपूर्ण गुण अपेक्षित है और वह है साधना–अर्थात पूर्ण तन्मयता के साथ अभ्यास (रियाज़) करना। गुरू के प्रति एकनिष्ठता, आस्था तथा समर्पण की भावना और अपने अभ्यास के प्रति तल्लीनता–ये दो ऐसे उपादान हैं, जिनसे किसी कला, विशेषतः संगीत–कला, की आत्मा में प्रवेश किया जा सकता है। पं. रविशंकर के निम्नोद्धृत कथन से भी यही ध्वनित होता है–

'The third principal term associated with out music is 'Sadhana', which means practice and discipline eventually leading to self realization. It means practicing with a fanatic zeal and ardent dediation to the Guru and the Music'

संगीत–शिक्षण का परम्परागत ढंग

नए विद्यार्थी की व्यावहारिक शिक्षा आरम्भ करने के लिए एक विशिष्ट परम्परागत प्रथा– गंडा समारोह– का आयोजन होता है, जिसमें उस्ताद अपने शागिर्द की कलाई पर एक गंडा बांधता था और कुछ पवित्र मंत्रों का उच्चारण करता था। इसके पश्चात ही गुरू अपने शिष्य को संगीत की शिक्षा देना आरंभ करता था। यह समारोह एक पवित्र अनुष्ठान समझा जाता था और उस्ताद तथा शागिर्द के बीच इस प्रकार स्थापित हुए सम्बन्धों को आजीवन निभाना होता था। इस समारोह के फलस्वरूप शिष्य को भी कुछ अधिकार मिल जाते थे। संगीत की शिक्षा तथा उसके सार्वजनिक प्रस्तुतीकरण में उसे अपने उस्ताद तथा उसके संबंधियों का संरक्षण–समर्थन प्राप्त हो जाता था। इस प्रकार उस्ताद की निजी दिलचस्पी और उस्ताद–शागिर्द के निकट सम्बन्ध के फलस्वरूप शागिर्द को अनेक प्रकार की कठिनाईयों के बावजूद लगन तथा साहस के साथ अध्ययन–अभ्यास की प्रेरणा मिलती थी।

प्रायः गायन–कला की शिक्षा आरम्भ करने में जो पहला पाठ सिखाया जाता था, वह सुर भरना होता था। शागिर्द को अपनी श्वास क्षमता के अनुसार एवं कंठतारता के अनुरूप मन्द्र–सप्तक के मूल स्वर षड्ज पर रुकना होता था। यह अभ्यास नियमित रूप से प्रतिदिन प्रातःकाल एक–दो घण्टे तक करना होता था। षड्ज की दीर्घता धीरे–धीरे बढ़ाई जाती थी। इस अभ्यास का उद्देश्य टिकाव, स्थिरता–शक्ति, आवाज की तारता और श्वास–नियंत्रण बढ़ाना होता था।!

आरंभिक अवस्था में शिष्यों को गुरू का कुशल–निर्देशन बहुत उपयोगी एवं सहायक होता था। यह अभ्यास प्रातः महीनों और आवश्यकता पड़ने पर वर्षों तक किया जाता था।

Pratibha Spandan

पहले पांच–छः वर्ष तक शिष्य को अपने उस्ताद की आज्ञा का पूर्णतः पालन करना होता था और उसकी शिक्षा उस्ताद के उपदेश पर ही अवलम्बित होती थी। क्योंकि उस्ताद मौखिक परम्परा द्वारा ही शिक्षण प्रदान करते थे। जैसे–जैसे शागिर्द की सांगीतिक योग्यता और क्षमता बढ़ती जाती थी, वह अपनी व्यक्तिगत प्रेरणा और कल्पना में अग्रसर होता जाता था।

हमारे भारतीय संगीताचार्यों की यह विशेषता रही है कि वे सुनने पर बहुत जोर देते रहे हैं। एक कुशल कलाकार का गायन सुनकर अभ्यास द्वारा शिष्य उसकी गायकी को पूर्णतः आत्मसात कर सकता है। जब हम किसी कला का श्रेष्ठ गायन सुनते हैं तो हमारा मन मस्तिष्क स्वतः स्फूर्त और एकाग्र हो जाता है। इससे उस चीज़ की सूक्ष्म विशेषताओं का ज्ञान होता है। दूसरों का श्रेष्ठ गायन सुनकर ही शिष्य अपने उस्तादों से राग की बारीकियों का ज्ञान प्राप्त करते थे। गुरू–गृह में निवास करते हुए अभ्यासकाल में शिष्य को निरन्तर सांगीतिक वातावरण में रहने का अवसर मिलता था। ये शिष्य सदैव अपने गुरू और अन्य संगीतज्ञों के निकट सम्पर्क में रहते थे और उस्तादों के यहां संगीत विषयक विचार–विमर्श होता रहता था। संगीत की शिक्षा ग्रहण करने से पूर्व वे अनेक संगीत सभाओं को देख–सुन चुके होते थे और उन्हें सुर भरने तथा कंठ को सांगीतिक बनाने में बड़ी सहायता मिलती थी। उत्कृष्ट सांगीतिक बंदिशों और कलात्मक आलाप को सुनकर उनके कानों को एक प्रकार का स्वतः प्रशिक्षण मिलता रहता था।

Pratibha Spandan